P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दी लघुकथाओं में समाज

खेमकरण
शोधछात्र हिन्दी,
हिन्दी विभाग,
सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रूद्रपुर, ऊधम सिंह नगर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल (उत्तराखण्ड) भारत

सावित्री मठपाल
शोध निदेशक
हिन्दी विभाग,
सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रूद्रपुर, ऊधम सिंह नगर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल (उत्तराखण्ड) भारत

सारांश

लघुकथा, हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय एवं यथार्थवादी विधा है। प्रस्तुत शोध–अध्ययन इस विधा में सक्रिय कस्तूरीलाल तागरा, कुणाल शर्मा, कुमारसम्भव जोशी, चन्द्रेशकुमार छतलानी, दीपक मशाल, मार्टिन जॉन, मुन्नूलाल, मृणाल आशुतोष, राधेश्याम भारतीय, सन्तोष सुपेकर और योगराज प्रभाकर आदि समकालिक लघुकथाकारों की लघुकथाओं के सामाजिक–साँस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर केन्द्रित है।

मुख्य शब्द : लघुकथा, लघुकथा कलश, लघुकथा डॉट कॉम, समाज, सेतु।

प्रस्तावना

वर्तमान हिन्दी साहित्य के परिदृव्य पर कई विधाएँ यथा कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक और आलोचना, व्यक्ति, समय और समाज की जीवन्तता एवं सक्रियता हेतु सक्रिय हैं। इन विधाओं की रचनाएँ मानवीय चेतना को आह्लादित करती हैं तो उद्वेलित भी। इस क्रम में एक अन्य विधा लघुकथा का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा, जो इन दिनों समसामयिक पत्र–पत्रिकाओं, ब्लॉग और नेट पत्रिकाओं में प्रमुखतः से प्रकाशित हो रही है; जिसे प्रायः लघु कहानी, छोटी कहानी, मिन्नी कहानी इत्यादि की संज्ञा से अभिहित कर दिया जाता है। हिन्दी साहित्य में यह नवीन मौलिक उपलब्धि है।

यद्यपि इस विधा से छोटे–बड़े स्थापित–अस्थापित सभी साहित्यकार परिचित हैं परन्तु इसे सूक्ष्म दृष्टि से देखने, समझने और परखने सम्बन्धी आलोचनात्मक कार्य अभी प्रतीक्षासूची में है! तथापि अयन प्रकाशन, दिशा प्रकाशन और बोधि प्रकाशन सहित अन्य दर्जनों प्रकाशन इस विधा को अत्यधिक मान–सम्मान एवं दूरदृष्टि से देखते हैं; और लघुकथा–संग्रह–लघुकथा संकलनों का प्रकाशन कर इसकी निरन्तरता बनाए हुए हैं।

इसके अतिरिक्त लघुकथा विचारगोष्ठी, सम्मेलन और लघुकथा पाठ जहाँ इस विधा की लोकप्रियता का ग्राफ बढ़ा रहे हैं, वहीं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं उदाहरणार्थ– अविराम साहित्यिकी, अक्सर, अभिनव इमरोज, आधारशिला, कथाक्रम, कथादेश, जनगाथा, दैनिक जागरण, दृष्टि, नई धारा, नवल, परिन्दे, पाखी, पाठ, पुनर्नवा, प्रेरणा–अंशु, भारत सारथी, मधुमती, मरू नवकिरण, युगवाणी, लघुकथा डॉट कॉम, लघुकथा कलश, लघुकथा–वार्ता, लघुकथा दुनिया, शब्द प्रवाह, शोध दिशा, संरचना, सरस्वती सुमन, सादर इंडिया, साहित्य अमृत, सेतु, सृजन संवाद, सृजनगाथा डॉट कॉम, हंस, हरिगंधा, हिन्दी चेतना आदि के कार्य से इस विधा का विस्तार क्षेत्रीय–राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु सात समुन्दर पार भी अनुभूत किया जा सकता है।

इस समय इस विधा में सैकड़ों लघुकथाकार क्रियाशील हैं जिनकी लघुकथाएँ समसामयिक समाज का सामाजिक–साँस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। इन लघुकथाओं में कहीं संलाप करता हुआ समाज है तो कहीं विलाप करता हुआ समाज। कहीं स्थिर समाज है तो कहीं कई मोर्चों पर अस्थिर समाज। कहीं युद्ध के नाम पर युद्धरत समाज है, तो कहीं युद्ध के नाम पर स्वयं से युद्धरत समाज। कहीं धूर्त और चालाक समाज है तो कहीं भद्र और बेबाक समाज। कहीं सम्बन्धों से भागता हुआ समाज है तो कहीं सम्बन्धों के लिए जागता हुआ समाज। कहीं अवरोध के रूप में अवरोधी समाज है, तो कहीं प्रतिरोध के रूप में प्रतिरोधी समाज।

इस प्रकार विचार, संवेदना और अपनी यथार्थवादी दृष्टि के कारण हिन्दी लघुकथा, अनेक बाधाओं के पश्चात भी मंदगति से विकासमान है तथा अपने सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सतत उद्यत है।

अध्ययन का उद्देश्य

हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील धारा में ऐसे कई लघुकथाकार हैं जिनकी लघुकथाओं में व्यथित कर देने वाली व्यथा और चिन्तित कर देने वाला चिन्तन उपस्थित है। स्वयं को सामाजिक संवाहक के रूप में देखने वाले ये

लघुकथाकार, जहाँ नवीन दृष्टि से युक्त हैं वहीं लघुकथा की सारगर्भिता, गाम्भीर्य दृष्टि और उसके अनुशासन से भी परिचित हैं।

प्रस्तुत शोध–अध्ययन ऐसे ही लघुकथाकारों में प्रमुख कस्तूरीलाल तागरा, कुणाल शर्मा, कुमारसम्भव जोशी, चन्द्रेशकुमार छतलानी, दीपक मशाल, मार्टिन जॉन, मुन्नूलाल, मृणाल आशुतोष, राधेश्याम भारतीय, सन्तोष सुपेकर और योगराज प्रभाकर आदि की लघुकथाओं और उनमें अभिव्यंजित समाज के विश्लेषण पर आधारित है।

लघुकथा : अर्थ और परिभाषा

लघुकथा का अर्थ ऐसी छोटी कथा से है जो विचार, संवेदना और शिल्प के धरातल पर ठोस हो। जिसके आस्वादन के पश्चात स्वतः यह अनुभूति हो कि यह नव्य विधा स्वयं में परिपूर्ण है।

लघुकथा का निर्माण दो शब्दों के योग से हुआ है– लघु और कथा। लघु शब्द का अर्थ लघु अथवा छोटे होने की अवस्था अथवा भाव है, और कथा से आशय है कहना अर्थात भूत, वर्तमान और भविष्य के सामाजिक यथार्थ की कलात्मक प्रस्तुति।

वर्तमान कालावधि में लघुकथा कई आयामों में परिभाषित हो रही है। इन परिभाषाओं से लघुकथा का अर्थ, उसकी अवधारणा और स्वरूप भी स्पष्ट हो रहे हैं। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम डॉ0 शकुन्तला किरण का मत है कि, ''लघुकथा लघु–आकारीय गद्य–कथात्मक रूप में जीवन के क्षण विशेष के आन्तरिक सत्य की वह सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण अभिव्यक्ति है जो पाठकीय चेतना को झकझोरने के साथ–साथ कोई गम्भीर चिन्तन–बीज भी प्रदान कर सके।''[1]

डॉ0 अशोक भाटिया के विचार हैं कि, ''लघुकथा एक ऐसी कथा–रचना है, जिसका फलक और आकार कहानी से छोटा होता है। यह वैसे ही छोटा होता है जिस प्रकार कहानी का फलक और आकार, उपन्यास से छोटा होता है।''[2]

भगीरथ परिहार के शब्दों में, ''लघुकथा एक कथ्यप्रधान विधा है। कथानक सहवर्ती भूमिका में होता है। लघुकथा के लिए छोटे कथानक काम के हैं। इसलिए एक घटना, स्थिति, मनःस्थिति को, एक दृश्य और बिम्ब में रूपायित करना ही लघुकथा है।''[3]

हरिशंकर परसाई के अनुसार, ''लघुकथा कथात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम रूप है।''[4]

जगदीश कश्यप का कथन है कि, ''लघुकथा के लिए पहली शर्त है कि उस छोटी रचना में एक कथा–प्रक्रिया हो। यह कथा प्रक्रिया लघु कलेवर में इस ढंग से विकसित की जाती है कि समस्या का एक विश्वसनीय बिम्ब उभरता है और पाठक को लगता है कि उसने एक पूरी रचना का आस्वाद लिया है।''[5]

इस तरह उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन में निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट प्रतीत होते हैं कि–

1. लघुकथा, कथ्यप्रधान विधा है।
2. लघुकथा, उपन्यास और कहानी के पश्चात कथात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम रूप है। इसलिए यह विधा, अन्य उल्लिखित कथा विधाओं में पूर्णतः छोटा अर्थात लघु है। लघुता इसकी प्रमुख विशेषता है और अनुशासन भी।
3. लघुकथा मानव जीवन की सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण अभिव्यक्ति है।
4. लघुकथा मानवीय चेतना को झंकृत ही नहीं अपितु उसे चिन्तन बिन्दु भी प्रदान करती है।
5. लघुकथा का कार्य एक घटना, एक स्थिति, एक मनःस्थिति को एक दृश्य बिम्ब में रूपायित करना है; अतः इस विधा में लेखन कार्य हेतु लेखकीय कौशल अपेक्षित है।
6. लघुकथा में अभिव्यक्ति–क्षमता, भाषा–शैली और शिल्प की प्रमुख भूमिका है।
7. लघुकथा का महत्वपूर्ण गुण प्रभावान्विति है।

लघुकथा की गम्भीरता के दृष्टिगत प्रखर साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने उचित ही कहा है कि, ''लघुकथा लेखन के लिए अलग अप्रोच की जरूरत है।''[6]

समाज : अर्थ एवं परिभाषा

समाज का अर्थ बहुत व्यापक है। सामान्यतः एक स्थान पर रहने वाले मनुष्य, वर्ग, समुदाय, समूह और किसी विशेष उद्देश्य से स्थापित की गई संस्था को समाज कहते हैं। इसे समूह, सभा या दल इत्यादि कई अन्य अर्थों में भी ग्रहण जाता है। विचारणीय है कि इसका स्वरूप पल और प्रकृति की भाँति निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।

समाज का महत्व मनुष्य के लिए हवा, पानी और अन्न की तरह है। यदि समाज से किसी मनुष्य को निष्कासित कर दिया जाए, तब उसका जीवित रहना असम्भव है। इसे अंग्रेजी में 'सोसायटी' भी कहा जाता है। सामाजिक–सॉस्कृतिक और शैक्षिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अब 'समाज और सोसायटी', इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक–दूसरे के पर्याय के रूप में प्रचलित हैं।

समाज में गति, परिवर्तन और उसकी निरन्तरता हेतु व्यक्ति का समाज में रहना आवश्यक है, अन्यथा समाज नामक संस्था स्वतः समाप्त हो जाएगी। व्यापक अर्थ में यह कहना समीचीन होगा कि समाज, व्यक्ति की सामाजिक प्रगति, विकास और सामाजीकरण के लिए बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे उपेक्षित दृष्टि से देखकर मनुष्य एक पग भी आगे बढ़ नहीं सकता।

कहने का तात्पर्य है कि समाज, मनुष्य के लिए ऐसी संस्था है जो उजाला पैदा करने का कार्य करती है, और मनुष्य उस उजाले में स्वयं को पहचानने की पहल; अतः दोनों ही एक दूसरे के लिए महत्वपूर्ण हैं।

समाज को परिभाषित करते हुए समाजशास्त्री मौरिस गिन्सबर्ग का कथन है कि, ''समाज ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जो कुछ सम्बन्धों अथवा व्यवहार की विधियों द्वारा संगठित है तथा उन व्यक्तियों से भिन्न है जो इस प्रकार के सम्बन्धों द्वारा बँधे हुए नहीं हैं अथवा जिनके व्यवहार उनसे भिन्न हैं।''[7]

मौरिस गिन्सबर्ग द्वारा दी गई परिभाषा के आलोक में यह कहना उचित होगा कि समाज, सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यवहारों की मजबूत व्यवस्था है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। इस सन्दर्भ में डॉ0 जी0

के0 अग्रवाल भी समाज के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए तीन तथ्य प्रस्तुत करते है। हैं।[8]

उनके अनुसार पहला तथ्य है कि चूंकि समाज का निर्माण सामाजिक सम्बन्धों से होता है और सामाजिक सम्बन्ध पूर्णतः अमूर्त, सरल–जटिल व परिवर्तनशील होते रहते हैं अतः समाज को भी अमूर्त, जटिल व परिवर्तनशील व्यवस्था कहा जाता है।

दूसरा तथ्य है कि समाज का निर्माण करने वाले सामाजिक सम्बन्ध, मनमाने न होकर बहुत से साँस्कृतिक नियमों से बँधे रहते हैं।

तीसरा तथ्य है कि व्यक्ति का महत्व इसी अर्थ में है कि व्यक्तियों द्वारा ही सामाजिक सम्बन्धों की महत्ता है एवं इन्हीं द्वारा इन सम्बन्धों की स्थापना की जाती है। ऐसे में इन बिन्दुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि मात्र व्यक्तियों के एकत्रीकरण को ही समाज नहीं कहा जा सकता है।

निष्कर्षतः समाज, मानवीय सम्बन्धों का ताना–बाना हैं जिसमें मनुष्य एक दूसरे सम्बद्ध रहते हैं। यह व्यापक और स्वाभाविक रूप से एक विकसित यथार्थ है।

हिन्दी लघुकथाओं में समाज

बीसवीं सदी, विशेषकर आठवें दशक से हिन्दी लघुकथा अपनी प्राथमिकता, प्रकृति और शैली परिवर्तित कर सामाजिक और यथार्थवादी भूमिका का निर्वहन कर रही है। इसी कारण वर्तमान हिन्दी लघुकथा के व्यापक परिदृश्य पर वैविध्यपूर्ण समाज के सुख के रंग और दुख के बेरंग सरलता से अनुभूत किए जा सकते हैं। लघुकथाकार अपनी लेखकीय कुशलता से क्षेत्रीय–वैश्विक सभी प्रकार की समस्याओं और विद्रूपताएँ प्रस्तुत करने में सक्षम प्रतीत होते हैं।

समाज सदैव परिवर्तनशील रहा है। स्वस्थ–सार्थक समाज हेतु यह सब स्वीकार्य भी हैं, परन्तु परिवर्तन की इस प्रक्रिया में वर्तमान समाज में सामाजिक–साँस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियाँ एवं विषमताएँ अपने उच्चतम रूप में प्रतीत होती हैं। विभिन्न संस्थाएँ इन विसंगतियों से तो पीड़ित हैं, श्रम और उत्पादन के प्रमुख केन्द्र औद्योगिक आस्थानों में भी सदियों से श्रमिक न्याय, समानता, सम्मान और बन्धुत्व की छाँव पाने के लिए संघर्षरत हैं। इस सन्दर्भ में कस्तूरीलाल तागरा की लघुकथा 'गुलाब के लिए'[9] सामाजिक–आर्थिक शोषण का सत्यान्वेषण है जो सर्वहारा[34] की प्रतिरोध की संस्कृति एवं बुजुर्आ[35] के शोषण की अपसंस्कृति चित्रित करती है–

माली ने जैसे ही बगीचे में प्रवेश किया, कुछ पौधे उल्लास से तो कुछ तनाव से भर गए।

माली ने अपनी खुर्पी सम्भाली। गुलाब के पौधे के इर्द–गिर्द उग आई घास को खोद–खोदकर क्यारी के बाहर फेंकने लगा। उसके बाद उसने मिट्टी में खाद डाली और क्वारी को पानी से भर दिया।

क्वारी के बाहर एक तरफ घायल पड़ी घास को माली इस समय जल्लाद जैसा लग रहा था, पर वह बेचारी कर क्या सकती थी। ठीक इसी समय घास को बगीचे के बाहरवाली सड़क से ऊँची–ऊँची आवाज सुनाई देने लगीं–मजदूर एकता जिन्दाबाद! मजदूर एकता...

आवाजें और ऊँची होती गईं। थोड़ी देर में पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज शुरू कर दिया। आंदोलनकारी इधर–उधर भागने लगे। चीख–पुकार मच गई। चोट खाए कुछ लोग बचने के लिए बगीचे की ओर भागे। पुलिस लाठियाँ भाँजते हुए वहाँ भी पहुँच गई।

गुलाब ने कोलाहल सुना तो पास ही घायल पड़ी घास से इठलाते हुए पूछा, ''अरी घास! ये सब क्या हो रहा है।''

घास ने तिलमिलाकर जवाब दिया, ''कुछ खास नहीं, बस किसी गुलाब के लिए घास उखाड़ी जा रही है।''[10]

लघुकथा, माली द्वारा घास खोदना और पुलिस द्वारा अपनी माँगों के लिए आंदोलनरत श्रमिकों पर लाठी चार्ज करना, इन दो बिम्बों के माध्यम से तीसरा बिम्ब बहुत सूक्ष्मता एवं गम्भीरता से रचती है।

प्रारम्भ के दोनों बिम्ब सामान्य हैं। समाज में इसके उदाहरण प्रायः मिलते रहते हैं, किन्तु दोनों बिम्बों से तीसरे बिम्ब की निर्मिति कि ''कुछ खास नहीं, बस किसी गुलाब के लिए घास उखाड़ी जा रही है।'' लघुकथा की उन विशेषताओं की ओर उल्लेख करती है, जिसके लिए कहा जाता है कि वह अनकहे को कह देती है। अप्रस्तुत को प्रस्तुत कर देती है और सहृदयों का जहाँ तक पहुँचना असम्भव है, वहाँ तक भी पहुँचा देती है। लघुकथा का शीर्षक सांकेतिक है और भाषा–शैली एवं शिल्प भी ठोस। इस लघुकथा में गुलाब पूँजीपति का, माली पुलिस का और घास मजदूर–श्रमिकों के प्रतीक हैं।

कस्तूरीलाल तागरा की लघुकथा 'गुलाब के लिए' के आस्वादन के पश्चात महाकवि निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता'[11] का मन–मस्तिष्क में गूँजना स्वाभाविक है परन्तु दोनों ही दो विधाओं की रचनाएँ हैं। 'कुकुरमुत्ता' हिन्दी कविता की उपलब्धि है तो 'गुलाब के लिए' हिन्दी लघुकथा की।

लघुकथा का इतिहास देखा जाए तो मजदूर–श्रमिकों पर अधिक लघुकथाएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं। इसके विपरीत हिन्दी लघुकथा के विषय–वस्तु हेतु 'परिवार' सदैव महत्वपूर्ण रहा है। इतना महत्वपूर्ण कि इसे सामाजिक जीवन की प्रथम पाठशाला की संज्ञा से सुशोभित किया जाता रहा है, परन्तु इसके बाद भी प्रतीत होता है कि उत्तर आधुनिक समाज में सामाजिक जीवन का यह पाठशाला बिखराब की प्रक्रिया में है। माता–पिता गाँव, शहर में उपेक्षित अथवा किसी वृद्धाश्रम में रहने के लिए अभिशप्त हैं। आधुनिक परिभाषा के अनुसार परिवार का तात्पर्य हो गया है मात्र पति–पत्नी और एक–दो बच्चे। इस प्रकार समाज का सामाजिक स्व निरन्तर क्षतिग्रस्त होता जा रहा है।

कुणाल शर्मा की लघुकथा 'छाँव'[12] इस ओर इंगित करती है कि व्यक्ति जब समस्याओं से घिरता है तब चिन्तित–बेबसी की स्थिति में सर्वप्रथम वह अपने परिचितों को खोजता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समय चाहे कोई भी हो, अन्ततः अपने परिवार के लोग

ही काम आते हैं। बस पारिवारिक सम्बन्धों को सहेजने की कला विस्मृत न हो।

इस लघुकथा के धरातल पर ऐसा बेटा है जो कभी अपनी माँ और घर के वरिष्ठों को अप्रिय उद्‌बोधन देकर कि ''हम अपने पैरों पर खड़े हो गए हैं और सब सम्भाल सकते हैं!''[13] लड़–झगड़कर शहर आ गया।

शहर में वही बेटा आज अस्पताल में अपनी गर्भवती पत्नी के साथ बहुत चिन्तित अवस्था में था। पूरे शहर में उसके लिए ऐसा कोई भी व्यक्ति न था, जो अस्पताल आकर उसे, उसकी नवजात बच्ची और उसकी पत्नी को देख सके। हालचाल, स्वास्थ्य पूछ सके। थक–हारकर उसने माँ को फोन किया। माँ ने उसे दो–चार डाँट पिलाकर कल सुबह की ट्रेन से शहर पहुँचने की स्वीकृति दे दी। बेटे की आँखें नम हो जाती हैं।

लघुकथा का समापन भाग सहृदयों को सम्वेदित करता है। यदि सिद्धान्त और व्यवहार की एकता हो तब, कोई भी सम्बन्ध, सम्बन्धों की सीमा पर लहूलुहान न मिले; परन्तु वर्तमान समाज की त्रासदी है कि सामाजिक–साँस्कृतिक परिवर्तन का स्वरूप इस प्रकार हो गया है कि अब सिद्धान्त भी लहूलुहान है और व्यवहार भी।

परिणामस्वरूप विज्ञान, तकनीकी, भोजन–पानी, मकान, सड़क की सुविधा इत्यादि और विश्वग्राम की अवधारणा के उपरान्त भी मानवीय, पारिवारिक सम्बन्धों का ग्राफ निरन्तर गिरता अवबोधित होता है। ऐसे में कुणाल शर्मा की प्रतीकात्मक शीर्षक की लघुकथा 'छाँव' संवेदना का भाव पुष्ट करती हुई, परिवार में माता–पिता एवं पारिवारिकता की प्रबल पक्षक्षर संविदित होती है।

संविदित तो यह भी है कि समाज में बालिका भ्रूण हत्या का घृणित खेल व्यापक स्तर पर चल रहा है। स्त्रियों के लिए यह ऐसा जघन्य अपराध है जो कई कानूनी प्रावधानों के पश्चात भी थम नहीं रहा है। इस अपराध के न थमने के कई कारणों में प्रथमता भारतीय परिवारों का पुत्रलोभ है, तो द्वितीय कारण धन हेतु उच्च शिक्षित डॉक्टरों की कुत्सित लालसा भी। इसे भी बहुत सरलता से रोका जा सकता है! चन्द्रेशकुमार छतलानी की लघुकथा 'पश्चाताप'[14] का प्रतिपाद्य संदेश भी यही है।

लघुकथा के कथानक में बेटा, गर्भवती बहू, और मरनासन्न पिता हैं, जिनके हृदय में अतीतकालीन ऐसा दुख समाया हुआ है, जिनका पश्चाताप करना चाहते हैं परन्तु जीवनपर्यन्त वह पश्चाताप की चिन्ता से मुक्त हो न सके। मुक्त भी तब हुए जब बेटा, अपनी गर्भवती स्त्री को लेकर उनके समक्ष आकर कहता है–

''पापा, आपकी बहू माँ बनने वाली है।''

''मेरा.. समय... आ... गया है...।'' उसने लड़खड़ाती धीमी आवाज में कहा।

''पापा, वादा करो कि आप फिर हमारे पास आओगे... हमारे बेटे बनकर...'' बेटे की आँखों से आँसू झरने लगे।

वह बहू की कोख देखकर मुस्कुराया, फिर बेटे को इशारे से बुलाकर कहा, ''तू भी... वादा कर... मैं बेटे की जगह... बेटी बनकर आया... तो मुझे मार मत देना...!''

कहते ही उसके सीने से बोझ उतर गया। उसने फिर आँखें बन्द कर ली। अब उसे पत्नी की रंक्तरंजित कोख दिखाई नहीं दे रही थी।[15]

प्राचीन विषयवस्तु का आधार बनाकर इस प्रकार की अर्वाचीन प्रस्तुति भी लघुकथा को पठनीयता की विशेष श्रेणी में रखती है। लघुकथा का अन्त कुछ फिल्मी है परन्तु मनभावन है। लघुकथा की भाषा–शैली भी स्तरीय है, और विषयवस्तु के अनुकूल इसका शीर्षक भी; जो लघुकथा के अन्त तक यह जिज्ञासा बनाए रखने में सफल है कि किसी व्यक्ति को अन्ततः किस प्रकार का पश्चाताप है!

पश्चाताप भी कई प्रकार के हैं, यह प्रमुखतः तब होता है जब व्यक्ति और समाज का मन–मस्तिष्क एवं हृदय कोई अनुचित कार्य कर बैठें। जटिल समाज का विश्लेषण प्रमाणित करता है कि यदि पश्चाताप होने लगे, तो जंगल की भाँति यह दुनिया हरीतिमा हो जाए, परन्तु व्यक्ति, समाज और देश के अन्दर ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी परिव्याप्त अहम्मन्यता का भाव, इस हरीतिमा की अभिलाषा के विरूद्ध है।

इस सम्बन्ध में विचार करें तो दो देशों के युद्ध में मृत्यु को प्राप्त सैनिकों के शव देखकर कोई देश अपनी युद्धनीति पर न पश्चाताप करता है, न ही सुरक्षा के नाम पर मृत्यु का गमनागमन रोकने में समर्थ पाता है। देश को किसी परिधि अथवा सीमा के अन्तर्गत देखना मानवीय अपसंस्कृति रूपी संशय की ऐसी पराकाष्ठा है जो दो देशों के मध्य युद्ध करवा ही देती है। ऐसे में कुमारसम्भव जोशी की लघुकथा 'जंग'[16] अपने व्यंजनात्मक शीर्षक के साथ यह विदित कराती है कि 'जंग', कभी जंग लड़कर खत्म नहीं होता अपितु देश के कर्ताओं–धर्ताओं के दिमाग पर लगे जंग को स्वच्छकर, इसे सरलता से खत्म किया जा सकता है।

लघुकथा का कथानक दो देशों के फौजियों की मित्रता की भ्रातृत्व भावना की पवित्रता पर आधारित है, जिसमें सतनाम भारतीय और मजीद पाकिस्तानी फौजी है। पुल टूटने और राशन न पहुँचने के कारण मजीद का दाल खाकर जी ऊब गया है। अब उसे सब्जी चाहिए। वह अपने मित्र भारतीय सतनाम को बुला लेता है। तत्पश्चात 'बॉर्डर फेन्सिंग' पर दोनों फौजी मित्र, अपने–अपने देशों की वर्तमान स्थिति पर वार्तालाप करने लग जाते हैं।

लघुकथा में धर्म का उल्लेख भी आया है और संवाद में पंजाबी भाषा का प्रयोग भी दृष्टव्य है। यह सब कुछ इतनी शालीनता से हुआ है कि न धर्म के प्रति अन्धभक्ति है, न ही भाषा के प्रति कोई आन्तरिक–बाह्य विरोध; अपितु पाकिस्तानी फौजी मजीद का एक संवाद पाकिस्तान ही नहीं, वरन् भारत सहित विश्व के सभी देशों के राजनीतिज्ञों हेतु एक वैश्विक सुझाव भी प्रतीत होता है, ''पता नहीं हुक्मरान क्यों जंग के पीछे पड़े हैं? अवाम की दौलत को जंग में हर्ज करने की बजाय स्कूल, अस्पताल खोलें, रोटी–रोजगार दें।''[17] परन्तु स्कूल, अस्पताल और रोजी–रोजगार देने की अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व की स्थिति क्या से क्या हो गई है। राजनीतिज्ञों की मानसिकता से सब परिचित हैं।

कुमारसम्भव जोशी की लघुकथा 'जंग' में सब्जी, राशन, घर–परिवार, पारिवारिक एवं बेरोजगारी की समस्या, स्कूल, अस्पताल न होने के कारण नवजात की मृत्यु, धर्म और भाषा आदि सब कुछ है। आंचलिता का प्रवाह भी। ऐसे प्रयोग भी लघुकथा को पठनीय बनाकर उसे अपने उद्देश्यों के निकट ले जाते हैं।

समाज की वृहत्तम जटिल संरचना में ऐसे कई व्यक्ति हैं जिनके हृदय में डर बैठा हुआ है। यह बुरा होने की कल्पना से उपजा हुआ ऐसा भाव है, जो वर्तमान समाज में निरन्तर बढ़ता जा रहा है। बिना कारण डर का कोई औचित्य भी नहीं, अतः इसी कारण अवचेतन में स्थित डर का यह भाव, जाने–अनजाने व्यक्ति का छुपा हुआ सत्य भी उजागर कर देता है। लघुकथा जगत के पृष्ठ पर सशक्त हस्ताक्षर दीपक मशाल की 'डर',[18] इस सन्दर्भ में एक खूबसूरत लघुकथा है, जिसमें मध्यमवर्गीय मन का द्वन्द्व रह–रहकर उभरता है।

लघुकथा में एक ऐसे बूढ़े व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो अपने मनोवैज्ञानिक उतार–चढ़ाव से भयग्रस्त है। उसके बहू–बेटे पुणे में डॉक्टर है, और बेटी–दामाद चंडीगढ़ में इंजीनियर। अनुशासन का पाठ सीख चुके बहू–बेटे और बेटी–दामाद कई बार कह यह प्रस्ताव रख चुके हैं कि अब रिटायरमेंट लेकर अथवा ट्रान्सफर करवाकर उनके पास आ जाएँ। मकान को बेच दें या किराए पर दे दें परन्तु अपनी पत्नी संग बारह कमरों वाले हवेलीनुमा मकान में रह रहा वह बूढ़ा, बिजली–पानी के संकट के बाद भी वहीं रहना चाहता है। इतने बड़े मकान को किराए पर देने की बात सुनकर उसकी चिन्ता प्रायः बढ़ जाती है।

एक रात जब बुढ़िया पानी पीने के लिए उठी, तो वह देखती है कि बूढ़ा नींद में बड़बड़ा रहा है, ''नहीं... नहीं... तुम ऐसे मेरे मकान पर कब्जा नहीं कर सकते। इसीलिए मैं किराए पर नहीं देता था। मुझे पता था तुम सब मेरे मकान पर आँख गढ़ाए बैठे थे। पर तुम मेरे जीते जी ऐसा नहीं कर सकते।''[19]

बूढ़े को इस स्थिति देखकर और इस प्रकार जोर–जोर से बड़बड़ाना सुनकर बुढ़िया को तीस वर्ष पूर्व की घटना याद आ जाती है। तब वे भी इसी हवेलीनुमा मकान में किराए पर रहते थे, फिर एक दिन मकान मालिक के लापता हो जाने के बाद दोनों ने दरवाजे पर अपनी नेमप्लेट लगा ली। तब से वे दोनों इस मकान को छोड़कर कहीं नहीं जाते।

दीपक मशाल की लघुकथा 'डर', कथार्थ और यथार्थ, दोनों स्तरों पर चलती है। इसी कारण वह प्रवाह, सम्प्रेषणीयता, भाषा–शैली और शिल्प, सभी स्तरों पर सशक्त है।

दीपक मशाल की लघुकथा का विषयवस्तु परिवार है। इसी प्रकार कस्तूरीलाल तागरा, कुणाल शर्मा, कुमारसम्भव जोशी और चन्द्रेशकुमार छतलानी की लघुकथाओं में भी परिवार है। वास्तव में यह अधिगम का महासागर है, परन्तु वर्तमान परिवेश में परिवाररूपी यह महासागर छिन्न–भिन्न और प्रदूषित हो रहा है। किसी का अस्तित्व न सिद्धान्त से निर्मित होता है और न उसकी विभिन्न व्याख्याओं से; अपितु भावनाओं से निर्मित होता है। यदि भावनाएँ नहीं तो किसी भी कार्य को उसकी परिणति तक पहुँचाना कदापि सम्भव नहीं।

इसी कारण विदित होता है कि युवा लघुकथाकार राधेश्याम भारतीय न पारिवारिक सिद्धान्तों का विमर्श उठाते प्रतीत होते हैं, न ही पारिवारिक व्याख्याओं की। वह तो मात्र भावनाओं का विमर्श तैयार करते हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि परिवार अन्ततः एक दूसरे को समझ–समझाकर ही चल सकता है। पारिवारिक जीवन की विद्रूपताओं को प्रस्तुत करती राधेश्याम भारतीय की लघुकथा 'दूरी'[20] विद्रूपता के साथ बड़े भाई द्वारा परिवार, सम्बन्ध और शाख बचाने का संघर्ष भी प्रस्तुत करती है–

घर में देवरानी–जेठानी का कलह यहाँ तक बढ़ गया कि बड़े भाई को न चाहते हुए भी छोटे के लिए अलग से मकान खरीदना पड़ा। उसे डर था कि कहीं रोज–रोज के झगड़े से कोई बड़ा हादसा न हो जाए।

माँ–बाप की मृत्यु के बाद बड़े भाई का दायित्व छोटे के प्रति और बढ़ गया था।

जेठानी ने पति से पूछा, ''कहाँ लिया है मकान ?''

''बहुत दूर है... उसका मकान...'' इतना कहते हुए उसकी आवाज भर्रा गई और आगे वह कुछ न कह सका।

अगले दिन उसकी पत्नी ने न जाने कहाँ से पता लगवा लिया उस खरीदे गए मकान का।

पति के घर आते ही उस पर बरसते हुई बोली, ''ये दो गली छोड़कर ही खरीद लिया मकान... हाँ...हाँ... हमारी छाती पर दलवानी थी मूँग...'' वह अनाप–शनाप बके जा रही थी।

बड़ा भाई चुप था क्योंकि उसे तो यह दूरी भी मीलों जैसी लग रही थी।[21]

प्रतीत होता है कि जनसामान्य की भाषा–शैली आत्मसात करने वाले राधेश्याम भारतीय जैसे लघुकथाकार ही दूरी' जैसी अप्रतिम प्रस्तुति दे सकते हैं। वर्तमान समाज देखकर ज्ञात होता है कि व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य सामाजिक–साँस्कृतिक और आत्मीय सम्बन्धों में निकटता की अपेक्षा बहुत दूरियाँ आ गई है। इसका एक कारण चल–अचल सम्पत्ति और गरीबी–बेरोजगारी भी है।

परन्तु बहुधा यह भी देखने को मिलता है कि धन–सम्पत्ति होने के उपरान्त भी समृद्ध परिवारों के बीच बहुत दूरियाँ हैं और चेहरे से सकून भी गायब। अलग–थलग रहते हुए मात्र जीवित रहना ही समस्याओं का हल नहीं अपितु परिवार एक वृक्ष है तो परिवार के सदस्य उसकी डालियाँ। दोनों का साथ रहना अनिवार्य आवश्यकता है। इस वर्णित प्रसंगानुसार आधुनिक युग में ये डालियाँ किस प्रकार सूख रही हैं, पारिवारिक विडम्बना का यही दृश्य, युवा लघुकथाकार मृणाल आशुतोष की लघुकथा 'बछड़ू'[22] में रचनात्मक कुशलता के साथ चित्रित है।

लघुकथा में माँ अनुभूत करती है कि उसके पड़ोसी गनेशिया द्वारा गाय का बछड़ू बेच देने से गाय बहुत व्यथित है; तो कहीं न कहीं वह भी व्यथित है। माँ, इस सामान्य घटना एवं अपनी चिन्ता को जर्मनी गए अपने

बेटे से जोड़कर देखती है और स्मरण करती है कि किस प्रकार उसने भी अब फोन करना बन्द कर दिया है। पति द्वारा पूछने पर वह आगे कहती है, ''हमने भी तो बीस लाख और एक गाड़ी में अपने बछड़ू को...''[23] बेच दिया है।

स्पष्ट है बछड़ू से तात्पर्य उनके अपने बेटे से है, जिसे शादी के नाम पर उन्होंने भी लाखों रूपये के दहेज लेकर बेच दिया था। जो अब विदेश में अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार निमग्न है कि उसे अपने माता–पिता की कुछ भी चिन्ता नहीं।

इस प्रकार सरल भाषा और संवादात्मक शैली की लघुकथा द्वारा मृणाल आशुतोष दहेज जैसी विकृत परम्परा को भी सामाजिक कटघरे में खड़ा करते हैं।

सामाजिक कटघरे में विभिन्न समस्याओं को खड़ा करना आधुनिक लघुकथा की प्रबल पक्षधरता है। बिना पक्षधरता के व्यक्ति और विधा, दोनों मृत हैं। अतः एक विधा के रूप में आधुनिक लघुकथा विज्ञान पर नहीं, अपितु विज्ञान के अतार्किक और मनुष्य विरोधी उपयोग पर प्रश्नचिह्न लगाती है। सोशल मीडिया के रूप में फेसबुक पर नहीं, परन्तु इस आभासी संसार से संवेदनात्मक जुड़ाव पर प्रश्नचिह्न लगाकर नए सिरे से सोचने के लिए बाध्य भी करती है।

विज्ञान और प्रौद्यौगिकी ने भौगोलिक, सामाजिक–साँस्कृतिक सीमाओं का अतिक्रमण किया तो मात्र इसलिए कि ज्ञान और विचार का सकारात्मक प्रवाह हो सके। ऐसा है भी, परन्तु विज्ञान, प्रौद्यौगिकी और सोशल मीडिया के गुण प्रकट होने के साथ, इनके उपयोग सम्बन्धी साँस्कृतिक अवगुण भी प्रकट हो रहे हैं। परिणामतः कई सामाजिक प्रघटनाएँ भी वातावरण को प्रदूषित कर रही हैं। यदि सोशल मीडिया में विशेषकर फेसबुक का उल्लेख करें तो यहाँ फेक अकॉउंटों की प्रचुरता है। इस विषय में लघुकथाकार मुन्नुलाल की 'इंज्वाय'[24] रसात्मक बोध की विचारात्मक लघुकथा है। इसका पूर्वाद्ध निम्नवत दृष्टव्य है–

''पापा नहीं मान रहे हैं।'' उसने बहाना बनाया।

''तो ?'' रवि ने जवाबी मैसेज किया।

''तो मुझे भूल जाओ।''

''यह असम्भव है प्रिया। यहाँ फेसबुक पर मेरे बने रहने का मकसद ही तुम्हें पाना है। तुम्हें खोकर मैं शर्तिया जान दे दूँगा।''

''ऐसा भी क्या!'' भीतर से हिल उठी प्रिया।

''मैं सभी मायने में तुमसे प्यार करने लगा हूँ।''

परन्तु लघुकथा के उत्तरार्द्ध में नया विस्फोट होता है। बात बढ़ती देख, प्रिया नाम की लड़की, रवि से कहती है, ''मैं कोई लड़की नहीं, तुम्हारी तरह लड़का ही हूँ। फेसबुक पर फकत 'एंज्वाय' कर रहा था बस।''[25]

हिन्दी लघुकथा की मिट्टी पर संवादात्मक शैली की लघुकथाएँ भी फल–फूल रहीं हैं। यद्यपि अन्य शैलियों की अपेक्षा यह जटिल शैली है जिसमें मात्र संवाद के माध्यम से विषय–वस्तु स्पष्ट करना आवश्यक होता है; तथापि लघुकथाकार इन चुनौतियों को स्वीकार कर स्तरीय लघुकथाएँ लिख रहे हैं। मुन्नुलाल की 'इंज्वाय' इसी शैली की लघुकथा है जो विषयवस्तु की दृष्टि से भी नवीन है, परन्तु शिल्प के स्तर पर अन्त में कुछ शिथिल।

जब ऑफलाइन सम्बन्ध ऑनलाइन अथवा ऑनलाइन सम्बन्ध ऑफलाइन में परिवर्तित होने लगे, तब कई व्यावहारिक समस्याएँ आती हैं। फिर संवेदनाओं का अधिक महत्व नहीं रह जाता। विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के मध्य खाइयाँ भी निरन्तर गहरी होती जाती हैं। मॉर्टिन जॉन की लघुकथा 'डिजिटल स्लेव'[26] शालीनता से यह घोषणा करती प्रतीत होती है कि इक्कीसवीं की पीढ़ी बिखरकर 'डिजिटल स्लेव' में परिवर्तित होती जा रही है। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में नौकरी करना और समय–असमय लैपटॉप, स्मार्ट फोन और टेबलेट पर उंगलियाँ घूमाकर अनिवार्य उपभोग की वस्तुएँ मंगवाना ही इनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मॉर्टिन जॉन की लघुकथा का सामाजिक–साँस्कृतिक परिदृश्य लेटेस्ट अर्थात अधुनातन है। मम्मी–पापा, मेट्रो सिटी में नौकरी कर रहे अपने बेटे के फ्लैट में आकर चिन्तित हो जाते हैं।

उनकी चिन्ता का कारण यह है कि बेटे ने एक अर्पामेंट की पाँचवीं मंजिल पर फ्लैट ले रखा है। किचन में भी एक–दो बर्तनों के अतिरिक्त कुछ नहीं है! पिता को चाय की चाह जागती है तो वह ऑनलाइन चाय मंगवा लेता है।

लंच के लिए चिन्तित माँ को आश्वस्त करता हुआ बेटा शीघ्रता से लंच के तीन पैकिट भी ऑनलाइन मंगवा लेता है। पिता को न्यूज पेपर चाहिए था तो बेटा तुरन्त लैपटॉप खोलकर उनके सामने रख देता है ताकि वे ऑनलाइन पढ़ सके। रेस्टोरेंट का खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी न होने पर मम्मी घर में खाना बनाने के लिए कहती है, तो बेटा सब्जी और राशन के पैकेट भी ऑनलाइन मँगवा लेता है।

मेट्रो सिटी में व्यतीत चार दिनों का जीवन अब उन्हें आन्तरिक उकताहट से भर देता है। मम्मी को बाजार में घूमने की इच्छा होती है ताकि अपने बड़े बेटे और उसके बच्चों के लिए कुछ खरीददारी कर सके, तो बेटा लैपटॉप लेकर खड़ा हो जाता है–लो गारमेन्ट का पूरा बाजार खोल दिया।

मम्मी–पापा की व्याकुलता संकेत करती हैं कि वे ऑनलाइन नहीं वरन् उन्मुक्त वातावरण के ऑफलाइन जीवन व्यतीत करने वाले लोग हैं, जिनका इस मेट्रो सिटी में कोई कार्य नहीं। वे जितने दिनों के लिए अपने बेटे के पास मेट्रो सिटी में आए थे, उससे पूर्व ही अपने घर वापिस लौट जाते हैं।

लघुकथा में अपने बुजुर्ग मम्मी–पापा की इच्छाओं और संवेदनाओं पर युवा बेटे की मानसिकता पूर्णतः हावी है। इसी कारण बेटा, सुविधा के नाम पर घर में सभी वस्तुएँ मंगवाने के लिए उद्यत है। उसे लगता है कि तकनीकी का उपयोग करके वह घर बैठे ही सबकुछ मंगवा लेगा। उसके इस कार्य से मम्मी–पापा को शारीरिक और मानसिक संतुष्टि मिलेगी।

परन्तु शिक्षा प्राप्त करके अच्छी नौकरी प्राप्त करने वाला बेटा, ऐसा अंतःकरण प्राप्त न कर सका जो मम्मी–पापा का अंतःकरण पढ़ सके। मम्मी–पापा चाहते रहे कि बेटा, मन के घाव पर मरहम लगा दे किन्तु बेटा अन्त तक उनके घाव को समझने में असफल रहा।

ऑनलाइन की यही विद्रूपता देखकर विश्व के समाज वैज्ञानिक, दुनिया को ऑफलाइन बनाने की पहल कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में मॉर्टिन जॉन की लघुकथा 'डिजिटल स्लेव' एक बड़े विमर्श का द्वार खोलती प्रतीत होती है।

उन्मुक्त वातारण में रहने के अभ्यस्त माता–पिता चार दिनों ही मेट्रो सिटी में रहकर उकताहट, घबराहट और तनाव से भर गए। वहाँ का आधुनिक समाज भी इस प्रकार की संस्कृति रच रहा है कि कोई भी तनाव एवं अवसाद से भर जाए।

फिर तनाव होने से तनावग्रस्त व्यक्ति के स्वास्थ्य पर त्वचा सम्बन्धी समस्याएँ, जोड़ों और मांसपेशियों का दर्द, हृदयरोग, रक्तचाप, पेट में दर्द, वजन में अस्थिरता उत्पन्न होना, मधुमेह, प्रजनन प्रणाली[27] इत्यादि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहे हैं। अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी मेट्रो क्षेत्रों में मानसिक रूग्नता भी अधिक है।

आधुनिक समाज की यही विडम्बना है कि मेट्रो सिटी में सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं तथापि वहाँ सामाजिक–साँस्कृतिक, आर्थिक और प्रमुखतः कई प्रकार की मानसिक चिन्ताएँ परिव्याप्त हैं। इसके विपरीत जहाँ सुख–सुविधाएँ कम है अथवा इनका अभाव है, चिन्ता के स्तर पर वहाँ के दृश्यों में भी मेट्रो सिटी जैसी समरूपताएँ परिलक्षित होती हैं।

दोनों क्षेत्रों की चिन्ताएँ व्यक्ति और समाज को अन्दर से खोखला करती प्रतीत होती हैं। समाचार–पत्र भी इन सबसे अनभिज्ञ हो युद्ध के समाचार प्रकाशित करने में अधिक अनुरक्ति रखते हैं। इन सबको देखकर अपनी पारिवारिक समस्याओं के बोझतले दबा व्यक्ति, बोझ सह न सकने के कारण और भी दबता चला जाता है। फिर उसकी हँसी कब चीखों में परिवर्तित हो जाती है, उसे पता नहीं चल पाता। युवा लघुकथाकार सन्तोष सुपेकर की लघुकथा 'हँसी की चीखें'[28] इसी विषय की पुष्टि करती हुई एक स्तरीय प्रस्तुति है।

समाचार पत्र में यह समाचार कि 'इराक में शुरू हुआ एक, कभी न खत्म होने वाला युद्ध' पढ़कर लघुकथा के नायक की मुस्कान हँसी में और हँसी फिर ठहाकों में परिवर्तित हो जाती है। उनको यह समाचार पसन्द नहीं आता क्योंकि इधर वे भी कई मोर्चों पर असफल रहने के कारण बहुत चिन्तित हैं। कैंसरग्रस्त पिता उपचार करवाना है इसलिए मुम्बई जाने के लिए 'रिजर्वेशन हेतु चिन्तित हैं। लोन लेकर अपने जवान बेटे को ऑटो रिक्शा दिया, परन्तु वह एक दिन भी न चला सका, इसलिए लोन के किश्त चुकाने हेतु चिन्तित हैं। बेटी की शादी टूट गई, अतः उसके जीवन सँवारने हेतु चिन्तित हैं। किचन की दीवार खोखली है, टॉयलेट जाम है और गीचर में करेंट नहीं आ रहा, इस कारण भी चिन्तित हैं।

वह युद्ध पर टिप्पणी करते हैं, ''हूँह...कभी न खत्म होने वाला युद्ध इराक में।'' और बड़बड़ाते हैं, ''यहाँ तो आम आदमी रोज ही लड़ता है इससे बड़े और खतरनाक युद्ध! लड़ता है, हारता है, और फिर लड़ता है।'' फिर वे हँसे, हँसे और हँसते ही चले गए। उनकी हँसी, हँसी थी या चीखें, उन्हें पता नहीं चला।[29]

स्तरीय लघुकथाओं की विशेषता होती है कि उसमें कथ्य भी होता है और सामाजिक जीवनानुभव से जुड़ा हुआ तथ्य भी। दोनों में किसी का अभाव लघुकथा के अनुशासन को प्रभावित कर देता है। सन्तोष सुपेकर की लघुकथा में इन दोनों का संतुलन और संयोजन दिखता है।

लघुकथा के शिल्प की भांति मानव जीवन में भी संतुलन और संयोजन आवश्यक है। दोनों न होने की स्थिति में वही होता है जैसे सन्तोष सुपेकर की लघुकथा के नायक के साथ हुआ। यह आधुनिक समाज और एक देश की विडम्बना ही कही जाएगी कि मनुष्य की हँसी चीखों में तबदील होती जा रही है। आखिर इस दुनिया में ऐसी कितनी दुनिया है कि सामाजिक–साँस्कृतिक सहयोग, सरोकार, मूल्य और प्रतिरोध खत्म होते जा रहे हैं।

प्रतीत होता है कि विश्व के समस्त देशों के पास युद्ध और नरसंहार हेतु लाखों–करोड़ों रूपए हैं परन्तु जनमानस के सुख–सुविधाओं हेतु कुछ भी नहीं। जनमानस भी स्वार्थ के चादर में अपना चेहरा इस तरह छुपाए बैठा है कि गलत कार्य होने पर भी वह बाह्य प्रतिरोध नहीं करता, अपितु मोहनदास करमचंद गांधी के तीनों बन्दरों और उनके विचारों को कि 'बुरा न सुनो, बुरा न देखो और बुरा न कहो' को, पूर्वाग्रह की चाशनी का ईंट बनाकर जीवनपर्यन्त अपने सिर पर किसी भार की तरह ढोता रहता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में लघुकथाकार योगराज प्रभाकर की लघुकथा 'गांधी का चौथा बन्दर'[30] प्रतिरोध की संस्कृति को पल्लवित–पोषित करती है।

लघुकथा की कथावस्तु में ढोंगी समाज है और उस समाज के अंग के रूप में ऐसा व्यक्ति है जिसने 'बुरा न सुनो, बुरा न देखो और बुरा न कहो' जैसे महान वैचारिक सिद्धान्तों का तात्पर्य मात्र इतना ही लगाया कि दुनिया चाहे भाड़ में चली जाए, बस नेत्र मूँदकर अपनी राह चलते रहो और येनकेन प्रकारेण अपने कार्य सम्पन्न करते रहो।

इसी कारण उसके साथी कर्मचारी ने जब धीरे से उसके कान में कहा कि ''ये नया ठेकेदार और इंजीनियर दोनों बहुत हरामी है। दोनों मिलकर सरकार को चूना लगा रहे हैं। सुना है कि ये सीमेंट बेचकर मोटी कमाई भी कर रहे हैं और...''[31] तब पूरी बात सुनने से पूर्व ही उसने अपने कानों पर तुरन्त हाथ रख लिया।

पुल के गिरने से बहुत से लोग मारे गए। पुल निर्माण में हुए लेन–देन और भ्रष्टाचार की सच्चाई को खुली आँखों से देखने की इच्छा उसके मन में कई बार उत्पन हुई परन्तु वह अपनी आँखों पर हाथ डाले निश्चिन्त खड़ा रहा।

किन्तु आज जब कुछ युवाओं द्वारा अश्लील गालियाँ देते हुए उसका भारी अपमान हुआ तो उसके आहत मन ने गांधी के तीनों बन्दरों को अपने कन्धे से उतारकर फेंक दिया, ''दफा हो जाओ यहाँ से।''[32]

योगराज प्रभाकर की लघुकथा में चौथे बन्दर का उल्लेख कहीं भी नहीं है परन्तु विदित होता है मनुष्य सामाजिक विसंगतियों को दूर करने की अपेक्षा कछुए की तरह अपने कवच में सिर छिपाए गांधी के तीनों बन्दरों में परिवर्तित होता जा रहा है। उसके पास कान, आँख और मुँह होने के पश्चात भी उसमें प्रतिरोध की क्षमता का

सर्वथा अभाव हैं। ऐसे में योगराज प्रभाकर की लघुकथा प्रतिरोध का चौथा बन्दर निर्मित करने के पक्ष में है। लघुकथा की भाषा आम बोलचाल की होने से ग्राह्य है, परन्तु शीर्षक व्यंजनात्मक एवं प्रतीकात्मक है।

विचारणीय प्रश्न है कि 'बुरा न सुनो, बुरा न देखो और बुरा न कहो' जैसे सैद्धान्तिक वाक्य को बन्दरों का प्रतीक देने के क्या कारण रहे होंगे? इनकी अपेक्षा इनके प्रतीक कुत्ते, गिद्ध, चील, बिल्ली, भालू शेर और हाथी इत्यादि जीव भी हो सकते थे। इस प्रसंग में यथार्थ का इतिहास कहता है कि यह प्रमुखतः आठवीं सदी का सिद्धान्त हैं जब जापान में शिंटो सम्प्रदाय का वर्चस्व था। तत्कालीन जापानी समाज में बन्दरों का बहुत सम्मान हुआ करता था। परिणामस्वरूप 'बुरा न सुनो, बुरा न देखो और बुरा न कहो' की विचारधारा को बंदरों के प्रतीक चिह्न के रूप में निरोपित किया गया।[33] कालान्तर में उसी जापानी संस्कृति को गांधी ने भारतीय सन्दर्भ में प्रचारित–प्रसारित किया।

भारतीय सन्दर्भ में उपरोक्त सिद्धान्त वाक्य का तात्पर्य था कि मनुष्य स्वयं कभी 'बुरा नहीं बोलेगा, बुरा नहीं देखेगा और बुरा नहीं कहेगा', और न ही ऐसा कुछ सहन करेगा; परन्तु विशेषकर भारतीय सामाजिक–सॉंस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक सन्दर्भ में इन सैद्धान्तिक–व्यावहारिक वाक्यों की ऐसे चिथड़े उड़ाए गए कि भारतीय संस्कृति आज भी कराहती प्रतीत होती है। सतही और संकीर्ण समझ के कारण ही ऐसे महान सैद्धान्तिक वाक्य आज अप्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं, जिस कारण मूल्यों का निरन्तर ह्रास भी अपने समय की नियति है। इस नियति को दूर करना ही हिन्दी लघुकथा का परम ध्येय है।

उपसंहार :

इस प्रकार प्रस्तुत शोध–अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी लघुकथा समाज को बहुआयामी–भौगोलिक स्वरूप में चिह्नित करती है। इन लघुकथाओं में योगराज प्रभाकर की लघुकथा 'गांधी का चौथा बन्दर' में जहाँ अन्याय–भ्रष्टाचार के विरोध में गांधी के चौथे बन्दर के रूप में प्रतिरोध की संस्कृति स्थापित है, वहीं कस्तूरीलाल तागरा की लघुकथा 'गुलाब के लिए' में वर्ग–संघर्ष की सूक्ष्म झाँकी, कुणाल शर्मा की लघुकथा 'छाँव' के सुखद धरातल पर परिवार में माता–पिता की वृक्षरूपी भूमिका, कुमारसम्भव जोशी की लघुकथा 'जंग' में पड़ोसी दो देशों के फौजियों की सामाजिक–सॉंस्कृतिक, सुख–दुख और विकासपरक दृष्टि, चन्द्रेशकुमार छतलानी की लघुकथा 'पश्चाताप' में कन्याभ्रूण हत्या से उपजा एक व्यक्ति का मृत्युपर्यन्त आन्तरिक दुःख, दीपक मशाल की लघुकथा 'डर' में अनैतिक और नकारात्मक कारणों से हृदय में बैठा डर का सकारात्मक और सामाजिक स्वरूप, मार्टिन जॉन की लघुकथा 'डिजिटल स्लेव' में इलेक्ट्रोनिक पद्धति का अनुसरण कर गुलाम बने रहने के लिए अभिशप्त नई पीढ़ी, मुन्नूलाल की लघुकथा में 'इंज्वाय' में आधुनिक प्रेमियों के नवीन और असंवदेनशील चेहरे, मृणाल आशुतोष लघुकथा 'बछड़ू' में एक माँ का अपने बच्चे के प्रति बेचैनी और दहेज का विकृत रूप, राधेश्याम भारतीय की लघुकथा 'दूरी' में लम्बी होती पारिवारिक दूरियों एवं वैमनस्य भाव को कम करने हेतु प्रयत्नशील अग्रज, और सन्तोष सुपेकर की लघुकथा 'हँसी की चीखें' में युद्ध का समाचार पढ़कर पारिवारिक समस्याओं से व्यथित व्यक्ति का मनौवैज्ञानिक चित्रण अपनी जीवतन्ता के साथ उपस्थित है।

अतः यह कहना उचित होगा कि उपरोक्त लघुकथाकारों की दृष्टि अतिसूक्ष्म है जिनकी लघुकथाएँ विषयगत, भावगत और कलागत, तीनों स्तर पर जटिल सामाजिक–सॉंस्कृतिक क्रियाओं की प्रस्तुति में सफल प्रतीत होती हैं।

अंत टिप्पणी

1. *डॉ0 शकुन्तला किरण, हिन्दी लघुकथा, संकेत प्रकाशन, अजमेर, संस्करण : 2010, पृष्ठ संख्या 211*
2. *डॉ0 अशोक भाटिया, लघुकथा : विमर्श, सम्पादक–डॉ0 रामकुमार घोटड़, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या 191*
3. *भगीरथ परिहार, लघुकथा समीक्षा, एफ.एस.पी. मीडिया पब्लिकेशन्स, संस्करण : 2018, पृष्ठ संख्या 83*
4. *हरिशंकर परसाई, लघुकथा डॉट कॉम, सम्पादक–सुकेश साहनी–रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', नवम्बर 2010*
5. *जगदीश कश्यप, लघुकथा : विमर्श, सम्पादक–डॉ0 रामकुमार घोटड़, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या 113*
6. *राजेन्द्र यादव, लघुकथा डॉट कॉम, सम्पादक–सुकेश साहनी–रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', सितम्बर 2013*
7. *मौरिस गिन्सबर्ग, समाजशास्त्र : एक परिचय, लेखक हिरेन्द्र प्रताप सिहं एवं नवीन कुमार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, संस्करण : 2012–13, पृष्ठ संख्या 52*
8. *डॉ0 जी0 के0 अग्रवाल, लेखक–जी0 के0 अग्रवाल, साहित्य भवन प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 42–43*
9. *कस्तूरीलाल तागरा, संरचना–5, सम्पादक–डॉ0 कमल चोपड़ा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 84*
10. *वही, पृष्ठ संख्या 84*
11. *निराला, राग विराग, सम्पादक–रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1999 पृष्ठ संख्या 144*
12. *कुणाल शर्मा, 6 नई दस्तकों की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ संख्या 52*
13. *वही, पृष्ठ संख्या 52*
14. *चन्द्रेशकुमार छतलानी, 6 नई दस्तकों की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ संख्या 68*
15. *वही, पृष्ठ संख्या 68*
16. *कुमारसम्भव जोशी, इस दशक के 6 नवोदितों की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2019, पृष्ठ संख्या 137–138*
17. *वही, पृष्ठ संख्या 138*

18. *दीपक मशाल, खिड़कियों से..., रूझान पब्लिकेशन्स, राजस्थान, संस्करण : 2017, पृष्ठ संख्या 43*
19. *वही, पृष्ठ संख्या 43*
20. *राधेश्याम भारतीय, अभी बुरा समय नहीं आया है, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, पृष्ठ संख्या 21*
21. *वही, पृष्ठ संख्या 21*
22. *मृणाल आशुतोष, 66 लघुकथाकारों की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2019, पृष्ठ संख्या 128*
23. *वही, पृष्ठ संख्या 128*
24. *मुन्नुलाल, 6 नई दस्तकों की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, सम्पादक–मधुदीप, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2018, पृष्ठ संख्या 85*
25. *वही, पृष्ठ संख्या 85*
26. *मॉर्टिन जॉन, रचनाकार, डॉट आर्ग., ई पत्रिका, प्रविष्टि क्रमांक–164, सम्पादक– रवि रतलामी*
27. *विज्ञान प्रगति, अप्रैल 2018, सम्पादक–डॉ0 बालकराम, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 13*
28. *सन्तोष सुपेकर, हँसी की चीखें, अक्षर विन्यास, उज्जैन, मध्य प्रदेश, संस्करण : 2017, पृष्ठ संख्या 19*
29. *वही, पृष्ठ संख्या 19*
30. *योगराज प्रभाकर, दृष्टि, जुलाई–दिसंबर 2017, सम्पादक–अशोक जैन, हरियाणा, पृष्ठ संख्या 84*
31. *वही, पृष्ठ संख्या 84*
32. *वही, पृष्ठ संख्या 84*
33. *वेबदुनिया डॉट कॉम*
34. *सर्वहारा : समाज का निधर्न वर्ग जो मजदूरी करके अपना जीवन–निर्वाह करता है; जो जीवन–पर्यन्त अभाव में रहते हुए श्रम को भाव देता है।*
35. *बुजुर्आ : रूढ़िवादी मध्यमवर्ग अथवा समुदाय जिसकी सामाजिक–साँस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि लाभ शक्ति अर्जित करने तक सीमित होती हैं; अतः ये निम्न–मध्यम वर्ग का शोषण करता है। इनकी दृष्टि में मनुष्य की अपेक्षा पूँजी का महत्व अधिक होता है। हिन्दी डिक्शनरी, रेनुका टेक्नोलोजिज प्राइवेट लिमिटेड, 2015, साहित्य चिंतन डॉट कॉम*